परिणम्य-परिणामक शक्ति

शक्ति याने विशिष्ट बल; Power, Tonic, Booster; जो ऊर्जा भर दे, उत्साह को कई गुणा बढ़ाता चला जाए । जो कार्य साधारण बल से नहीं होता, उसके लिए विशेष बल/पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है । जीव को अपने रत्नत्रय रूप कार्य के लिए, शुद्धोपयोग के लिए, आत्म-मग्नता के लिए सर्व परभावों से भिन्न होना होता है । हर जीव सरलता से यह कार्य कर नहीं पाता । ऐसे जीव में रत्नत्रय के लिए उत्साह, बल भरने हेतु आचार्य देव ने बताया है कि आत्मा अनन्त शक्तियों का स्वामी है ।

आत्मा की अनंत शक्तियों के भण्डार में से आचार्य अमृतचन्द्र देव ने समयसार की मूल गाथाओं के आधार से समयसार परिशिष्ट में 47 शक्तियों को उद्घाटित किया है । इनमें से कुछ शक्तियाँ जीव के चैतन्य स्वभाव से सम्बंधित हैं, कुछ जीव के अन्य असाधारण स्वभाव से सम्बंधित हैं (जैसे सुख, निष्क्रियत्व शक्ति), कुछ वस्तु के अनेकांत स्वभाव से सम्बंधित हैं (जैसे एकत्व-अनेकत्व, तत्त्व-अतत्त्व शक्ति), कुछ कार्य के षट्-कारकों से सम्बंधित हैं (जैसे कर्ता, कर्म, करण शक्ति) । ये सारी शक्तियाँ जीव की स्वाभाविक शक्तियां हैं ।

चैतन्य स्वभाव से सम्बंधित शक्तियाँ हैं – जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सर्वदर्शित्व, सर्वज्ञत्व, स्वच्छत्व, प्रकाश, असंकुचित विकासत्व, परिणम्य-परिणामक शक्ति । शेष शक्तियों की चर्चा यथास्थान हो रही है; मैं यहाँ परिणम्य-परिणामक शक्ति की चर्चा करूँगा ।

परात्मनिमित्तक-ज्ञेयज्ञानाकारग्रहणग्राहणस्वभावरूपा परिणम्य-परिणामकशक्तिः ।

परिणम्य-परिणामक शक्ति अर्थात् पर-ज्ञेय को ग्रहण करने के और स्व-ज्ञान को ग्रहण कराने के स्वभावरूप शक्ति । पर-ज्ञेय को ग्रहण करना याने परिणम्य शक्ति और स्व-ज्ञान को ग्रहण कराना याने परिणामक शक्ति । यहाँ एक ही शक्ति के द्वारा आत्मा के प्रमाण-प्रमेयरूप द्वि-स्वभाव को दर्शित किया है ।

परिणम्य स्वभाव: ज्ञान का यह स्वभाव ही है कि वह ज्ञेयों को जान ले । कोई भी ज्ञेय भले ही वह स्व हो या पर हो; उसे ज्ञान जानता है, जानने का स्वभाव रखता है । उसी सिद्धांत को यहाँ प्रकट किया है परिणम्य भाव से । जो पर-ज्ञेय हैं उनके ज्ञेयाकारों को याने द्रव्य, गुण, पर्याय को जीव ग्रहण करता है । ग्रहण करने का अर्थ है स्पष्ट रूप से जानना । जैसे कोई धन को ग्रहण करके जेब में रख लेता है वैसा ग्रहण नहीं करता । बल्कि जैसे दर्पण बाह्य स्थित रूप को ग्रहण करता है, उसे प्रकाशित करता है वैसा जीव ज्ञेयों को ग्रहण करता है याने उसे स्पष्टरूप से प्रकाशित करता है ।

इससे यह सिद्ध हुआ कि आत्मा पर-पदार्थ को जानता है । यह जानना स्वयं की शक्ति है, ज्ञेयों की नहीं । प्रमाण आत्मा का धर्म है, ज्ञेयों का नहीं । पर-पदार्थ जीव के द्वारा जीव की ज्ञान शक्ति से ही जान लिए जाते हैं । उनको जानने में कोई पराधीनता, दीनता अथवा थकान हो ऐसा नहीं है क्योंकि यह

परिणम्य शक्ति आत्मा का स्वभाव ही है । जानने के कारण से खेद नहीं होता, खेद होता है घातीकर्मों के उदय से, मोह के परिणमन से । जैसा की आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने प्रवचनसार में कहा है –

जं केवलं ति णाणं तं सोक्खं परिणमं च सो चेव । खेदो तस्स ण भणिदो जम्हा घादी खयं जादा ।। ६० ।।

सबके जाननेरूप से परिणमन करना खेद का कारण नहीं है, बल्कि घाती कर्म खेद/दुःख के आयतन हैं । यदि यह स्वभाव शक्ति नहीं होती तो कहा जा सकता था कि जानने के कारण से दुःख है, जानना खेद का कारण है । लेकिन धन्य हैं शक्तिवर्णनकर्ता जो वस्तु स्वभाव को देखते हुए कह रहे हैं कि ज्ञेयाकारों को ग्रहण करना स्वभाव है, विभाव नहीं ।

जगत में ऐसे दार्शनिक हो गये हैं जिन्होंने जानने को ही विभाव मान लिया है । उनका मोक्ष तब होता है, जब जानना समाप्त हो जाता है । कुछ ऐसे दार्शनिक भी हैं जिन्होंने प्रमाण शक्ति को आत्मा का धर्म नहीं माना, परन्तु अचेतन पदार्थ का धर्म माना । ऐसे सारे दार्शनिकों को आचार्य देव ने इस शक्ति के द्वारा अनुभवसिद्ध प्रामाणिक उत्तर दिया है कि आत्मा में ज्ञेयों को ग्रहण करने की स्वाभाविक शक्ति है ।

इससे जो यह मानते हैं कि 'आत्मा स्वयं को ही जानता है, पर को नहीं', उनका निरास भी हो जाता है । वास्तव में जो पर का जानना है, वह स्वयं का ही जानना है । अतः यदि पर को पूर्णरूप से नहीं जाना जा रहा है, तो स्वयं को भी पूर्णरूप से नहीं जाना जा रहा है । जब तक अपने को अपूर्ण रूप से जानेगा तब तक दुखी ही रहेगा क्योंकि **दुःख का मूल अज्ञान** है । अतः इस शक्ति के माध्यम से 'पर को नहीं जानना, नहीं तो दुखी होओगे', 'पर से अपनी आँखें फोड़ लो', इत्यादि अनेक अज्ञानपूर्ण मान्यताओं को दूर किया है ।

इसी से यह भी फलित हो रहा है कि जब दुःख का कारण जानना नहीं है, तो फिर दुःख का कारण कुछ और है । वह कुछ और 'मोह-राग-द्वेष' भाव है । इससे दुःख के सही कारण तक भी पहुंचा जा रहा है । वाह, अब मुझे जानने से द्वेष नहीं करना है, बल्कि मोहादि भावों से स्वयं को मोड़ना है ।

इसी से सिद्ध हो रहा है आत्मा पर को जानता तो है, पर उनमें कुछ करता नहीं क्योंकि ज्ञेयाकारों को ग्रहण कर रहा है, परिणमा नहीं रहा । आत्मा पर-वस्तुओं के द्रव्य-गुण-पर्याय को उपादानरूप से उत्पन्न करे यह संभव नहीं । जैसे दर्पण वस्तु को झलकाता तो है, परन्तु उसे बनाने/बिगाड़ने नहीं लगता । वैसे ही आत्मा पदार्थों को जानता तो है, परन्तु उन्हें बनाने/बिगाड़ने नहीं लगता । जगत में वस्तुएं बनती-बिगड़ती हो, तो रहो; इस आत्मा का इसमें कुछ भी कर्तृत्व नहीं है । वे वस्तु स्वयं से ही बनती-बिगड़ती हैं । इससे सृष्टिकर्तृत्व का निराकरण भी हो जाता है ।

ज्ञेयों से कुछ भी ग्रहण किए बिना ही आत्मा वैसा का वैसा ज्ञेय को जान लेता है जैसा कि वह ज्ञेय है। यदि ज्ञेयों को ग्रहण करके, अपने में समा करके उन्हें जाना जाएगा तो ज्ञेय बचेंगे ही कहाँ । वे तो सभी समाप्त ही हो जायेंगे । उनका अस्तित्व भी क्या रहेगा! इसलिए सब ज्ञेयों की सुरक्षा रहते हुए **परिणम्य**

शक्ति सब ज्ञेयों को जान लेती है यह अद्भुत स्वभाव है । जगत के दार्शनिकों ने पदार्थों को अपने में समा कर अपनी बुद्धि में सृष्टि का ही नाश कर दिया है परन्तु वस्तु-स्वभाव के ज्ञाता सर्वज्ञ भगवंतों ने इस शक्ति के माध्यम से जगत को नाश से भी बचा लिया है ।

यहां प्रमाण शक्ति को ही परिणम्य शक्ति से कहा गया है। वास्तव में यह आत्मा के अद्भुत स्वरूप को प्रकट कर रही है। यह ज्ञान स्वभाव का उद्योतन है । ज्ञेय पदार्थ सहज ज्ञान में जाने जाते हैं यह परिणम्य शक्ति है।

परिणामक शक्ति: जैसे यह जीव स्वयं को तथा पर-ज्ञेयों को जानता है वैसे ही स्वयं को झलकाता भी है। याने स्वयं अन्य के ज्ञान का ज्ञेय भी बनता है। स्वयं के ज्ञानाकार/आत्माकार को ग्रहण कराना परिणामक शक्ति है । स्वयं का ज्ञानाकार याने पूर्ण स्वरूप; द्रव्य-गुण-पर्यायात्मक स्वरूप; इसे प्रकाशित करते रहना यह परिणामक शक्ति है । यहां प्रमेय शक्ति को परिणामक शक्ति कहा है।

याने मैं बस जानता ही रहूँ और कोई मुझे ना जान पाए – ऐसा संभव नहीं है । लोग गुप्त रह कर दूसरों को जानना चाहते हैं, स्वयं को प्रकट नहीं करना चाहते । लेकिन ऐसा मायाचारी का, धोखाधड़ी का काम आत्मा के स्वभाव में नहीं है । तुम दूसरों को जान लो और दूसरे भी तुम्हें जान लें – ऐसा आत्मा का सहज प्रकट स्वभाव है ।

क्या आपको ज्ञात है कि आप स्वयं को पूर्ण रूप से प्रकट करते जा रहे हैं? आपकी सारी विशेषताएँ जगत में प्रतिसमय प्रकट हो रही है । परिणामक शक्ति बता रही है कि तुम्हारा कुछ भी छुपा हुआ नहीं है । तो फिर पापपूर्ण कार्य करना तो दूर रहो, सोचे भी कैसे जाएँ । कितना पवित्र जीवन इस शक्ति के माध्यम से आविर्भूत हो रहा है ।

अहो ! विश्व में आपको जानने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है और औसतन हर 8 घंटे में एक नया जीव आपको पूर्ण रूप से जान रहा है । कल आपको जितने लोग जान रहे थे उनसे लगभग **3** अधिक लोग आज आप को जान रहे हैं । अनेकों के ज्ञेय बनाने से क्या आपको कुछ श्रम करना पड़ रहा है? क्या आप थकते जा रहे हैं? क्या आप दुबले होते जा रहे हैं ? दूसरों की निगाहें आप पर जम रही है तो क्या आपको थकान आ रही है? अरे, काहे की थकान, काहे का श्रम । इस जीव में स्वाभाविक परिणामक शक्ति है, बिना किसी श्रम के यह मैं जीव सबको अपना स्वरूप प्रकट कर रहा हूँ । सबको निमंत्रण है मुझे जानने का । मेरे स्वभाव में बसा है अपने आप को प्रकट करना ।

क्या आपको कष्ट होता है जब कोई आपको देखता है? क्या आपको नजर लग जाती है? आहा ! सारा टोना-टोटका, नजर लगना, दृष्टि-दोष - सब के सब इस शक्ति के माध्यम से दूर हो रहे हैं, नष्ट हो रहे हैं । भाई, मुझ में कोई नजर लगाओ कि मत लगाओ; मैं अपने आप को पूरा समर्पित कर रहा हूं। मुझमें शक्ति है कि मुझे पूर्णता से कोई भी जान ले जिस में ताकत हो । ऐसा करते हुए मुझे कोई

समस्या नहीं है । इसलिए कोई मुझे जान रहा है इससे मुझे कोई परेशानी नहीं। कोई मुझे नहीं जान रहा तो भी मुझे समस्या नहीं क्योंकि मैं तो अपने आप को ग्रहण करवा ही रहा हूं । ग्रहण करने वाले की शक्ति नहीं तो मैं क्या कर सकता हूं । इसलिए अब पर के विकल्पों से निश्चिंत होकर स्वयं के इस प्रमाण-प्रमेय स्वभाव को मैं जानता हूं ।

और अनेक अज्ञानी जीव कहते रहते हैं कि इसने हमें यह नहीं बताया, यह बात छुपायी आदि । लेकिन भो ज्ञानी! जैसे तुझमें परिणम्य-परिणामक शक्ति है वैसे ही अन्य जीवों में भी वह शक्ति है । याने वे सभी जीव अपने आप को तुझे प्रकट कर रहे हैं । लेकिन अहो अज्ञान, कि तुझे दिखाई नहीं देता । तेरे राग-द्वेष के कारण तेरी परिणम्य शक्ति पूर्ण प्रकट नहीं हो पाई । इसलिए अब दोष बोलना बंद कर दे । राग-द्वेष को इस शक्ति के माध्यम से मिटा कर पूर्ण ज्ञाता बन जा ।

और विचारो, प्रकाश करने पर भी उसे ही दिखेगा जिसमें देखने की शक्ति है। वैसे ही स्वयं को पूर्ण प्रकट करने पर भी वही देख सकेगा जिसमें ज्ञान है। ये जड़ पदार्थ इस परिणम्य-परिणामक शक्ति से रहित है तो यह अन्य ज्ञेय पदार्थ को ग्रहण कर सकते नहीं । अतः यह जड़ पदार्थ मुझे जान सकते नहीं; तो मैं क्यों इन्हीं के जानने में चित्त लगाऊँ। अरे! विजातीय के जानने में राग-द्वेष पैदा होता है, ब्रह्मचर्य दूषित होता है तो 'मैं चेतन, यह जड़ विजातीय' - यह मुझे जान नहीं सकते तब क्यों मैं बुद्धिपूर्वक अपना उपयोग इनको दूँ । अहो! अब मैं सजातीय निजी अपने चित्स्वभाव में ही चित्त दूंगा। ऐसा अपूर्व विश्वास इस शक्ति से प्रकट होता है ।

जगत में केवल आत्मा ही है जिसमें परिणम्य-परिणामक शक्ति है । शेष सभी द्रव्यों में परिणामक शक्ति तो है, परन्तु परिणम्य शक्ति तो मात्र आत्मा में ही है । अतः मैं आत्मा विलक्षण शक्ति का स्वामी हूँ ।

अधिक क्या कहें, यह परिणम्य-परिणामक शक्ति ही जीव का स्वभावभूत शक्ति है, यही अजड़स्वरूप है, इसी का साकारोपयोग होता है और इसी का निराकार उपयोग भी होता है, अनाकुल स्वरूप होने के कारण यही सुख है, यही स्वरूप की रचना का आधार है, इसी से आत्मा अखंडित प्रतापवाला है, इसी शक्ति से विश्व के सामान्य-विशेष भावों से परिणमा जाता है, इसी में लोकालोक के मेचक आकार हैं, यही स्व-संवेदनमयी है, इसी का चिद्विलास असंकुचित है, यह बिना किसी द्रव्य के ग्रहण-त्यागरूप स्वाभाविक है, यह हीनाधिकता से रहित है ऐसे इस शक्ति का पार नहीं है । इसमें समस्त शक्तियों का रूप दिखलाई दे रहा है ।

ऐसी अपूर्व शक्ति का प्रयोग निज में रमण के लिए हो ऐसी मंगल भावना के साथ विराम लेता हूँ ।

- विकास जैन (छाबड़ा), इंदौर. vikasnd@gmail.com 7000676108

19-4-2021